Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

आधुनिक हिंदी साहित्य में समाज और राजनीति का चित्रण: प्रमुख रचनाकारों की कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

अंकित श्रीवास्तव[1], **डॉ. बलप्रदा श्रीवास्तव**[2]
[1]शोधार्थी, आरकेडीएफ विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)
[2]सह-प्राध्यापक, आरकेडीएफ विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)
[1]ankit19shrivastava@gmail.com, [2]balprada2025@gmail.com

सारांश
यह शोध-लेख आधुनिक हिंदी साहित्य में समाज और राजनीति के अंतर्संबंधों का आलोचनात्मक परीक्षण करता है। अध्ययन का आधार आठ प्रतिनिधि कृतियाँ हैं—प्रेमचंद का "गोदान", फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आँचल", यशपाल का "झूठा सच", भीष्म साहनी का "तमस", श्रीलाल शुक्ल का "राग दरबारी", मन्नू भंडारी का "महाभोज", ओमप्रकाश वाल्मीकि की "जूठन" और उदय प्रकाश का "मोहनदास"। शोध में गुणात्मक, व्याख्यात्मक एवं तुलनात्मक विषयवस्तु-विश्लेषण अपनाया गया है। सामाजिक संरचना, वर्ग, जाति, लैंगिकता, सांप्रदायिकता, ग्रामीण जीवन, राज्य-संस्थाएँ, लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ, राजनीतिक संरक्षण, प्रतिरोध और नागरिक चेतना को प्रमुख विश्लेषण-श्रेणियों के रूप में निर्धारित किया गया। निष्कर्ष संकेत करते हैं कि आधुनिक हिंदी साहित्य समाज का निष्क्रिय दर्पण नहीं, बल्कि सत्ता-संबंधों का अनावरण करने वाला आलोचनात्मक सार्वजनिक क्षेत्र है। "गोदान" औपनिवेशिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामंती शोषण को, "मैला आँचल" स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के ग्रामीण संक्रमण को, "झूठा सच" विभाजन और राष्ट्र-निर्माण के अंतर्विरोधों को तथा "तमस" सांप्रदायिक राजनीति की संगठित प्रकृति को उद्घाटित करता है। "राग दरबारी" और "महाभोज" लोकतांत्रिक संस्थाओं के क्षरण, अपराध-राजनीति गठजोड़ और जनमत-निर्माण की विकृतियों को सामने लाते हैं; "जूठन" जाति-सत्ता के अनुभवजन्य यथार्थ को केंद्र में लाती है, जबकि "मोहनदास" उदारीकरणोत्तर व्यवस्था में पहचान, रोजगार और न्याय के संस्थागत अपहरण को रेखांकित करता है। अध्ययन का मुख्य प्रतिपादन यह है कि साहित्यिक यथार्थ घटनाओं की प्रतिलिपि नहीं, बल्कि चयन, भाषा, दृष्टिकोण और शिल्प के माध्यम से निर्मित सामाजिक-राजनीतिक व्याख्या है।

मुख्य शब्द: आधुनिक हिंदी साहित्य, समाज, राजनीति, सामाजिक यथार्थ, लोकतंत्र, जाति, सांप्रदायिकता, प्रतिरोध

1. प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास भारत के औपनिवेशिक अनुभव, सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष, विभाजन, लोकतांत्रिक राज्य-निर्माण, जाति-विरोधी चेतना, स्त्री-अस्मिता तथा उत्तर-औपनिवेशिक आर्थिक परिवर्तन के समानांतर हुआ है। इसलिए इसकी प्रमुख कृतियों में समाज और राजनीति अलग-अलग विषय न होकर परस्पर निर्मित होने वाली प्रक्रियाएँ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

साहित्य के इतिहास को जन-चित्तवृत्ति और युगीन परिस्थितियों से जोड़कर देखने की आधारभूमि तैयार की [1]। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने साहित्यिक परंपरा को स्थिर उत्तराधिकार के बजाय सतत मानवीय और सांस्कृतिक संवाद के रूप में समझने की दिशा दी [2]। नामवर सिंह ने इतिहास और आलोचना के संबंध को रेखांकित करते हुए रचना के मूल्यांकन में उसके सामाजिक समय और वैचारिक संरचना को महत्त्वपूर्ण माना [3]। रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद के साहित्य को औपनिवेशिक भारत की कृषक समस्या, राष्ट्रीय आंदोलन और वर्गीय अंतर्विरोधों के संदर्भ में विश्लेषित किया [4]।

प्रेमचंद का "गोदान" ग्रामीण कृषक जीवन, ऋण, जमींदारी, धर्माधारित वैधता और शहरी मध्यवर्गीय नैतिकता के जटिल संबंधों को कथात्मक रूप देता है [5]। फणीश्वरनाथ रेणु का "मैला आँचल" अंचल की बोली, लोक-संस्कृति, जातीय संरचना, स्वास्थ्य-संकट और नवोदित राजनीतिक आकांक्षाओं को एक बहुस्वरीय ग्रामीण संसार में संयोजित करता है [6]। यशपाल का "झूठा सच" विभाजन को केवल सामुदायिक हिंसा की घटना नहीं मानता; वह विस्थापन, अवसरवाद, वैचारिक संघर्ष, लैंगिक स्वायत्तता और स्वतंत्र राष्ट्र की दिशाहीनताओं का विस्तृत सामाजिक आख्यान प्रस्तुत करता है [7]। भीष्म साहनी का "तमस" यह दिखाता है कि सांप्रदायिक हिंसा आकस्मिक जनोन्माद भर नहीं होती, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ, प्रशासनिक निष्क्रियता, अफवाह और भय के संगठित उपयोग से निर्मित होती है [8]।

स्वतंत्रता के बाद लोकतंत्र के संस्थागत विस्तार के साथ साहित्य का ध्यान सत्ता की नई स्थानीय संरचनाओं की ओर गया। श्रीलाल शुक्ल का "राग दरबारी" शिक्षा, पंचायत, सहकारिता, पुलिस और स्थानीय नेतृत्व के बीच बने संरक्षण-तंत्र को व्यंग्य के माध्यम से उजागर करता है [9]। मन्नू भंडारी का "महाभोज" एक दलित युवक की मृत्यु को केंद्र बनाकर चुनावी राजनीति, प्रशासन, मीडिया और विपक्ष की उस प्रतिस्पर्धा का परीक्षण करता है जिसमें पीड़ित का जीवन राजनीतिक संसाधन में बदल जाता है [10]। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" जाति को केवल सामाजिक रूढ़ि नहीं, बल्कि भोजन, श्रम, विद्यालय, भाषा, स्मृति और आत्मसम्मान पर नियंत्रण रखने वाली संरचना के रूप में सामने लाती है [11]। उदय प्रकाश का "मोहनदास" प्रमाणपत्र, नौकरी और पहचान की चोरी के माध्यम से बताता है कि समकालीन व्यवस्था में अभिलेख, कार्यालय, पुलिस और न्याय-संस्थान किस प्रकार प्रभावशाली वर्ग के पक्ष में व्यक्ति के अस्तित्व को ही असत्य सिद्ध कर सकते हैं [12]।

साहित्य और समाज के संबंध को समझने के लिए केवल "प्रतिबिंब" की धारणा पर्याप्त नहीं है। रेमंड विलियम्स ने संस्कृति को सामाजिक उत्पादन की सक्रिय प्रक्रिया के रूप में समझाया और प्रभुत्वशाली, अवशिष्ट तथा उदीयमान प्रवृत्तियों के पारस्परिक तनाव पर बल दिया [13]। जॉर्ज लूकाच ने यथार्थवादी साहित्य की शक्ति को सामाजिक समग्रता और विशिष्ट चरित्रों के माध्यम से ऐतिहासिक संबंधों के उद्घाटन में देखा [14]। अंतोनियो ग्राम्शी की वर्चस्व की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि सत्ता केवल दमन से नहीं, बल्कि सहमति, संस्थाओं और सामान्य-बोध के निर्माण से संचालित होती है [15]। युर्गेन हाबर्मास का सार्वजनिक क्षेत्र का सिद्धांत इस प्रश्न को समझने में उपयोगी है कि साहित्य, प्रेस और विमर्श नागरिक मत-निर्माण के लिए किस सीमा तक वैकल्पिक मंच बनते हैं [16]।

फ्रेडरिक जेम्सन ने साहित्यिक आख्यान को सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रतीकात्मक समाधान और राजनीतिक अवचेतन के रूप में पढ़ने की पद्धति विकसित की [17]। मिखाइल बाख्तिन की बहुस्वरता और संवादधर्मिता की अवधारणाएँ उपन्यास में विभिन्न सामाजिक भाषाओं, वर्गीय स्वरों और वैचारिक स्थितियों की सह-अस्तित्वपूर्ण टकराहट को समझने में सहायता करती हैं [18]। एडवर्ड सईद ने संस्कृति और साम्राज्य के संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह दिखाया कि साहित्यिक रूप सत्ता के भूगोल, इतिहास और पहचान-निर्माण से जुड़ा रहता है [19]। बिल एशक्रॉफ्ट, गैरेथ ग्रिफिथ्स और हेलेन टिफिन ने उत्तर-औपनिवेशिक लेखन में भाषा, प्रतिनिधित्व और केंद्र-परिधि संबंधों की पुनर्संरचना पर बल दिया [20]। एजाज़ अहमद ने वर्ग, राष्ट्र, संस्कृति और उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांत के सरलीकरणों की आलोचना करते हुए ठोस ऐतिहासिक विश्लेषण की आवश्यकता बताई [21]।

फ्रांसेस्का ऑर्सिनी का हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र संबंधी अध्ययन मुद्रण, भाषा, साहित्य और राष्ट्रवादी राजनीति के परस्पर संबंधों को ऐतिहासिक रूप से स्थापित करता है [22]। वसुधा डालमिया ने आधुनिक उत्तर भारत में परंपरा, धर्म, राष्ट्र और सांस्कृतिक पहचान के निर्माण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया [23]। शिशिर कुमार दास ने आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास को अनेक भाषाओं, आंदोलनों और राजनीतिक घटनाओं के अंतर्संबंधों में प्रस्तुत किया [24]। गेल ऑम्वेट का जाति-विरोधी आंदोलनों का अध्ययन लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के बीच मौजूद तनावों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण ढाँचा देता है [25]। इन आलोचनात्मक आधारों के आलोक में वर्तमान अध्ययन चयनित हिंदी कृतियों को केवल कथा-सार के स्तर पर नहीं, बल्कि सत्ता-संबंध, सामाजिक पदानुक्रम, संस्थागत आचरण, प्रतिरोध और जनचेतना के संरचनात्मक संकेतों के रूप में पढ़ता है।

2. अध्ययन की समस्या

आधुनिक हिंदी साहित्य पर उपलब्ध आलोचना प्रायः किसी एक रचनाकार, एक कृति, एक आंदोलन अथवा किसी विशिष्ट विमर्श तक सीमित रहती है। इससे अलग-अलग ऐतिहासिक चरणों में समाज और राजनीति के बदलते संबंधों का तुलनात्मक स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। औपनिवेशिक कृषक जीवन से लेकर स्वतंत्रता, विभाजन, ग्रामीण लोकतंत्र, जातिगत अपमान, चुनावी हिंसा और उदारीकरणोत्तर संस्थागत अन्याय तक फैली प्रतिनिधि कृतियों को एक समान विश्लेषण-ढाँचे में पढ़ना आवश्यक है। समस्या यह भी है कि "सामाजिक चित्रण" और "राजनीतिक चित्रण" को कई बार अलग श्रेणियों के रूप में देखा जाता है, जबकि जाति, वर्ग, धर्म, लिंग और ग्रामीणता स्वयं राजनीतिक संसाधनों, प्रतिनिधित्व और अधिकार-वितरण से जुड़ी संरचनाएँ हैं। वर्तमान अध्ययन इसी विभाजन को चुनौती देते हुए यह जाँचता है कि साहित्य सामाजिक जीवन में निहित सत्ता को किस प्रकार दृश्य बनाता है और राजनीतिक प्रक्रियाओं के मानवीय परिणामों को कैसे अभिव्यक्त करता है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

- चयनित आधुनिक हिंदी कृतियों में सामाजिक संरचना, वर्ग, जाति, लैंगिक संबंध, धर्म और ग्रामीण-शहरी अंतर्विरोधों के चित्रण का विश्लेषण करना।

- चयनित कृतियों में राज्य, प्रशासन, पंचायत, शिक्षा, मीडिया, चुनाव और राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण करना।
- विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में समाज और राजनीति के बदलते संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- रचनाकारों द्वारा प्रयुक्त यथार्थवाद, व्यंग्य, बहुस्वरता, आत्मकथात्मक साक्ष्य और प्रतीकात्मकता की सामाजिक-राजनीतिक भूमिका को समझना।
- यह निर्धारित करना कि चयनित साहित्यिक कृतियाँ जनचेतना, प्रतिरोध और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के निर्माण में किस प्रकार योगदान देती हैं।

4. शोध प्रश्न

- चयनित कृतियों में सामाजिक असमानता किन संस्थाओं और सांस्कृतिक व्यवहारों के माध्यम से पुनरुत्पादित होती है?
- राजनीतिक सत्ता का स्वरूप औपनिवेशिक काल से समकालीन भारत तक किस प्रकार परिवर्तित होता दिखाई देता है?
- क्या साहित्य हाशिये के पात्रों को केवल पीड़ित के रूप में प्रस्तुत करता है, अथवा उन्हें प्रतिरोध और वैकल्पिक नैतिकता की सक्रियता भी प्रदान करता है?
- कथाशिल्प, भाषा और दृष्टिकोण सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ की व्याख्या को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

5. शोध-पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक और तुलनात्मक शोध-अभिकल्प पर आधारित है। इसका उद्देश्य किसी जनसंख्या के व्यवहार का सांख्यिकीय सामान्यीकरण करना नहीं, बल्कि चयनित साहित्यिक पाठों में निहित सामाजिक-राजनीतिक अर्थ-संरचनाओं की व्यवस्थित पहचान और व्याख्या करना है। अध्ययन में दस्तावेजीय स्रोतों से आँकड़ा-संग्रह तथा निर्देशित विषयवस्तु-विश्लेषण का प्रयोग किया गया।

अध्ययन-समष्टि आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य है। उद्देश्यपूर्ण नमूना-चयन के माध्यम से ऐसी 8 कृतियाँ चुनी गईं जो अलग-अलग ऐतिहासिक चरणों, सामाजिक समूहों और राजनीतिक संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। चयन के मानदंड थे: साहित्यिक मान्यता, सामाजिक-राजनीतिक केंद्रीयता, ऐतिहासिक विविधता, कथा-दृष्टि की भिन्नता और तुलनात्मक विश्लेषण की उपयोगिता। "जूठन" विधागत रूप से आत्मकथा है, पर उसका समावेश इसलिए किया गया है कि अनुभव-साक्ष्य के माध्यम से जाति-सत्ता का वह आयाम सामने आता है जो काल्पनिक आख्यानों की तुलना को समृद्ध करता है।

आँकड़ा-संग्रह की इकाइयों में प्रमुख और गौण पात्र, कथात्मक घटनाएँ, संस्थागत प्रसंग, संवाद, वर्णनकर्ता की टिप्पणियाँ, प्रतीक, स्थान, संघर्ष और समाधान शामिल किए गए। प्रारंभिक पठन के आधार पर 10 कोड निर्धारित किए गए: आर्थिक शोषण, जातिगत पदानुक्रम, लैंगिक असमानता, सांप्रदायिकता, ग्रामीण-शहरी विभाजन, प्रशासनिक शक्ति, लोकतांत्रिक संस्था, राजनीतिक संरक्षण, प्रतिरोध तथा नागरिक चेतना। प्रत्येक कृति में किसी आयाम की "प्रबल", "मध्यम", "सीमित" अथवा "प्रत्यक्षतः

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

अनुपस्थित" उपस्थिति उसके कथानक में केंद्रीयता, प्रसंगों की पुनरावृत्ति और चरित्र-परिणाम पर प्रभाव के आधार पर निर्धारित की गई। ये श्रेणियाँ सांख्यिकीय आवृत्ति नहीं, बल्कि तुलनात्मक गुणात्मक तीव्रता को व्यक्त करती हैं।

विश्लेषण तीन स्तरों पर किया गया। प्रथम स्तर पर प्रत्येक कृति का आंतरिक पठन किया गया; द्वितीय स्तर पर समान विषयों और संस्थाओं की कृतियों के बीच तुलना की गई; तृतीय स्तर पर ऐतिहासिक परिवर्तन की दिशा पहचानी गई। व्याख्या की विश्वसनीयता के लिए कथानक, चरित्र, संस्था और शिल्प—चारों प्रकार के साक्ष्यों को परस्पर मिलाया गया। निष्कर्ष उन अर्थों तक सीमित रखे गए हैं जिन्हें चयनित पाठों की संरचना समर्थन देती है; किसी काल्पनिक सर्वेक्षण, उत्तरदाता, प्रतिशत या सांख्यिकीय परीक्षण का उपयोग नहीं किया गया।

6. आँकड़ा विश्लेषण एवं व्याख्या

सारणी **6.1:** चयनित कृतियों का सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ

क्रम	कृति और रचनाकार	प्रथम प्रकाशन	मुख्य सामाजिक संदर्भ	प्रमुख राजनीतिक संदर्भ
1	गोदान — प्रेमचंद	1936	कृषक जीवन, ऋण, जाति, लैंगिक असमानता	औपनिवेशिक-सामंती सत्ता और ग्रामीण अभिजन
2	मैला आँचल — फणीश्वरनाथ रेणु	1954	अंचल, लोकजीवन, रोग, जातीय विभाजन	स्वतंत्रता-उत्तर ग्रामीण राजनीति और विकास
3	झूठा सच — यशपाल	1958 – 1960	विभाजन, विस्थापन, परिवार और स्त्री-स्वायत्तता	राष्ट्रवाद, विचारधारा और सत्ता-परिवर्तन
4	तमस — भीष्म साहनी	1974	सामुदायिक भय, हिंसा और विस्थापन	सांप्रदायिक लामबंदी और प्रशासनिक निष्क्रियता
5	राग दरबारी — श्रीलाल शुक्ल	1968	ग्रामीण संस्थाएँ, शिक्षा और सामाजिक अवसरवाद	स्थानीय प्रभुत्व, संरक्षण और लोकतांत्रिक विघटन
6	महाभोज — मन्नू भंडारी	1979	दलित जीवन, हिंसा और पीड़ित परिवार	चुनाव, पुलिस, मीडिया और अपराध-राजनीति गठजोड़
7	जूठन — ओमप्रकाश वाल्मीकि	1997	अस्पृश्यता, श्रम, शिक्षा और आत्मसम्मान	जाति-सत्ता, प्रतिनिधित्व और अधिकार-संघर्ष
8	मोहनदास — उदय प्रकाश	2006	बेरोजगारी, पहचान और वंचित समुदाय	नौकरशाही, पूँजी, पुलिस और न्याय का गठजोड़

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सारणी 6.1 से स्पष्ट है कि चयनित कृतियाँ 1936 से 2006 तक के सात दशकों को समेटती हैं। नमूने में औपनिवेशिक ग्रामीण समाज, स्वतंत्रता-उत्तर विकास, विभाजन, स्थानीय लोकतंत्र, जाति-सत्ता, चुनावी हिंसा और उदारीकरणोत्तर संस्थागत अन्याय शामिल हैं। यह ऐतिहासिक विस्तार सत्ता के रूपों में परिवर्तन की तुलना संभव बनाता है।

सारणी **6.2:** चयनित कृतियों में प्रमुख सामाजिक आयामों की गुणात्मक तीव्रता

कृति	वर्ग/आर्थिक शोषण	जातिगत पदानुक्रम	लैंगिक असमानता	सांप्रदायिकता	ग्रामीण-शहरी अंतर्विरोध
गोदान	प्रबल	प्रबल	प्रबल	सीमित	प्रबल
मैला आँचल	प्रबल	प्रबल	मध्यम	मध्यम	प्रबल
झूठा सच	प्रबल	मध्यम	प्रबल	प्रबल	प्रबल
तमस	मध्यम	मध्यम	मध्यम	प्रबल	मध्यम
राग दरबारी	प्रबल	प्रबल	मध्यम	सीमित	प्रबल
महाभोज	प्रबल	प्रबल	मध्यम	मध्यम	मध्यम
जूठन	प्रबल	प्रबल	मध्यम	सीमित	मध्यम
मोहनदास	प्रबल	प्रबल	मध्यम	सीमित	प्रबल

सारणी 6.2 का गुणात्मक मानचित्र दिखाता है कि आर्थिक शोषण और जातिगत पदानुक्रम अधिकांश कृतियों में केंद्रीय हैं। सांप्रदायिकता "झूठा सच" और "तमस" में सर्वाधिक प्रबल है, जबकि ग्रामीण-शहरी अंतर्विरोध "गोदान", "मैला आँचल", "झूठा सच", "राग दरबारी" और "मोहनदास" में कथानक को निर्णायक रूप से प्रभावित करता है। "प्रबल", "मध्यम" और "सीमित" श्रेणियाँ सांख्यिकीय मापन नहीं, पाठ में विषय की केंद्रीयता का तुलनात्मक संकेत हैं।

सारणी **6.3:** राजनीतिक संस्थाओं और नागरिक सक्रियता का तुलनात्मक मानचित्र

कृति	राज्य/प्रशासन	लोकतांत्रिक संस्थाएँ	राजनीतिक संरक्षण	मीडिया/जनमत	नागरिक प्रतिरोध
गोदान	मध्यम	सीमित	मध्यम	सीमित	मध्यम
मैला आँचल	मध्यम	मध्यम	मध्यम	सीमित	प्रबल
झूठा सच	प्रबल	मध्यम	प्रबल	मध्यम	प्रबल
तमस	प्रबल	सीमित	प्रबल	मध्यम	मध्यम
राग दरबारी	प्रबल	प्रबल	प्रबल	मध्यम	सीमित
महाभोज	प्रबल	प्रबल	प्रबल	प्रबल	प्रबल
जूठन	प्रबल	मध्यम	प्रबल	मध्यम	प्रबल
मोहनदास	प्रबल	मध्यम	प्रबल	प्रबल	प्रबल

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सारणी 6.3 बताती है कि स्वतंत्रता-उत्तर कृतियों में राज्य, प्रशासन और राजनीतिक संरक्षण की उपस्थिति अधिक प्रत्यक्ष होती जाती है। "राग दरबारी" संस्थागत कब्जे का और "महाभोज" चुनाव, पुलिस तथा मीडिया के गठजोड़ का व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हैं। "जूठन" और "मोहनदास" में नागरिक प्रतिरोध लेखन, शिक्षा, पत्रकारिता और न्याय की माँग के रूप में उभरता है।

सारणी **6.4:** कथाशिल्प और सामाजिक-राजनीतिक अर्थ

कृति	प्रधान शिल्प	हाशिये की आवाज़	सत्ता-उद्घाटन का तरीका	राजनीतिक प्रभाव
गोदान	सामाजिक यथार्थवाद	किसान, दलित और स्त्री	जीवन-संघर्ष और संस्थागत संबंध	शोषण की संरचनात्मक पहचान
मैला आँचल	आंचलिकता और बहुस्वरता	ग्रामीण समुदाय	लोकभाषा, सामूहिक पात्र और परिवेश	विकास तथा स्थानीय राजनीति की आलोचना
झूठा सच	वृहद ऐतिहासिक आख्यान	विस्थापित, स्त्री और वैचारिक असहमत	व्यक्तिगत जीवन में इतिहास का हस्तक्षेप	राष्ट्र-निर्माण के अंतर्विरोधों का परीक्षण
तमस	त्रासदीपूर्ण बहुदृष्टि	हिंसा से प्रभावित समुदाय	अफवाह, भय और संगठित उकसावे का क्रम	सांप्रदायिक राजनीति का विखंडन
राग दरबारी	व्यंग्य और विडंबना	साधारण ग्रामीण और निष्प्रभावी नागरिक	संस्थाओं के व्यवहार का हास्यात्मक अनावरण	लोकतांत्रिक पाखंड की पहचान
महाभोज	राजनीतिक यथार्थवाद	दलित मृतक, परिवार और जनसमुदाय	घटना के राजनीतिक उपभोग का प्रदर्शन	उत्तरदायित्व और न्याय की माँग
जूठन	आत्मकथात्मक साक्ष्य	दलित अनुभव का स्व-कथन	स्मृति और देहगत अपमान का दस्तावेजीकरण	जाति-विरोधी चेतना और आत्मसम्मान
मोहनदास	विडंबनात्मक समकालीन आख्यान	पहचान-वंचित श्रमिक युवक	अभिलेख और संस्थाओं द्वारा सत्य का उलटाव	अधिकार, पहचान और न्याय का प्रश्न

सारणी 6.4 से स्पष्ट है कि साहित्यिक शिल्प निष्क्रिय माध्यम नहीं है। यथार्थवाद सामाजिक संबंधों की समग्रता बनाता है, बहुस्वरता स्थानीय आवाज़ों को समान दृश्यता देती है, व्यंग्य संस्थागत भाषा और

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

व्यवहार के अंतर को खोलता है, आत्मकथा अनुभवकर्ता को प्रतिनिधित्व का अधिकार देती है और विडंबना आधुनिक अभिलेखीय सत्य की अस्थिरता को उजागर करती है।

6.1 "गोदान": अर्थव्यवस्था, जाति और नैतिक सत्ता

"गोदान" में समाज का आधार केवल कृषक गरीबी नहीं, बल्कि ऋण, लगान, जमींदारी, पुरोहितवाद, जाति और पितृसत्ता का परस्पर जुड़ा हुआ तंत्र है। होरी की निर्धनता व्यक्तिगत अकुशलता का परिणाम नहीं है; उसकी श्रम-क्षमता से अधिक शक्तिशाली वे संस्थाएँ हैं जो उपज, सम्मान और धार्मिक भय को नियंत्रित करती हैं। दातादीन जैसे पात्र आर्थिक लेन-देन को धार्मिक वैधता से जोड़ते हैं, जबकि रायसाहब का सामाजिक सम्मान सामंती वर्चस्व को सहज और स्वीकार्य बनाता है। किसान राजनीतिक नागरिक बनने से पहले देनदार, जाति-सदस्य और आश्रित प्रजा बना रहता है। इस प्रकार कृति औपनिवेशिक प्रशासन की दूरस्थ उपस्थिति तथा स्थानीय प्रभुत्व की प्रत्यक्षता को साथ रखती है।

धनिया, झुनिया और सिलिया के प्रसंग बताते हैं कि सामाजिक वर्ग अकेला विश्लेषण पर्याप्त नहीं है। स्त्रियाँ परिवार, जाति और श्रम—तीनों स्तरों पर असमानता का सामना करती हैं; फिर भी धनिया नैतिक प्रतिरोध की ऐसी आवाज़ बनती है जो औपचारिक राजनीतिक शक्ति के बिना सत्ता से प्रश्न करती है। उपन्यास का यथार्थवाद किसी एक खलनायक के माध्यम से शोषण को समझाने के बजाय संबंधों का ऐसा जाल निर्मित करता है जिसमें शोषक भी व्यापक व्यवस्था के भीतर स्थित हैं। यही इसकी राजनीतिक शक्ति है: पाठक गरीबी को दान की समस्या के रूप में नहीं, संरचनात्मक न्याय के प्रश्न के रूप में देखने लगता है।

6.2 "मैला आँचल": अंचल, विकास और लोकतांत्रिक संक्रमण

"मैला आँचल" का मेरीगंज राष्ट्र के हाशिये पर स्थित कोई स्थिर ग्राम नहीं है; वह स्वतंत्रता-उत्तर भारत के संक्रमण का सक्रिय स्थल है। यहाँ जातीय बस्तियाँ, लोकविश्वास, बीमारी, चिकित्सा, भूमि-संबंध, राजनीतिक दल और विकास की भाषा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। डॉक्टर प्रशांत का आगमन आधुनिक विज्ञान और सेवा की संभावना प्रस्तुत करता है, पर रोग का उपचार केवल औषधि से संभव नहीं क्योंकि बीमारी सामाजिक गरीबी, अशिक्षा, अविश्वास और प्रशासनिक उपेक्षा से जुड़ी है। कृति विकास को ऊपर से प्रदत्त सुविधा के रूप में नहीं, सामाजिक संबंधों से संघर्ष करती प्रक्रिया के रूप में चित्रित करती है।

रेणु की आंचलिक भाषा राजनीतिक अर्थ रखती है। लोक-बोलियों, गीतों, अफवाहों और सामूहिक आवाजों की उपस्थिति उस अभिजनवादी भाषा को चुनौती देती है जिसमें राष्ट्र और प्रगति की योजनाएँ निर्मित होती हैं। कृति में राजनीतिक दल ग्रामीण आकांक्षाओं को स्वर भी देते हैं और कई बार उन्हें अपने हित में विभाजित भी करते हैं। इसलिए स्वतंत्रता यहाँ अंतिम उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक लोकतंत्रीकरण की अधूरी शुरुआत है। सामूहिकता, सेवा और स्थानीय अनुभव प्रतिरोध के स्रोत बनते हैं, लेकिन जाति तथा संसाधन-असमानता उनकी सीमाएँ निर्धारित करती हैं।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

6.3 "झूठा सच": विभाजन, राष्ट्र और नागरिकता का संकट

"झूठा सच" विभाजन को सीमा-निर्धारण की राजनीतिक घटना से आगे ले जाकर घर, शरीर, स्मृति, रोजगार और संबंधों के विखंडन के रूप में प्रस्तुत करता है। सांप्रदायिक पहचान अचानक उत्पन्न नहीं होती; उसे प्रचार, संगठन, भय और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के माध्यम से तीव्र किया जाता है। लाहौर से विस्थापन और नए स्थान पर पुनर्स्थापन की प्रक्रिया बताती है कि स्वतंत्र नागरिकता का आदर्श संपत्ति, संपर्क, लिंग और अवसर की असमानताओं से प्रभावित है। जो राष्ट्र सबको समान सदस्यता देने का दावा करता है, उसी के आरंभिक क्षण में लाखों लोग शरणार्थी और संदेहास्पद "दूसरे" में बदल जाते हैं।

उपन्यास की व्यापक पात्र-संरचना विविध वैचारिक स्थितियों को आमने-सामने रखती है। राष्ट्रीय मुक्ति के आदर्श, साम्यवादी प्रतिबद्धता, व्यक्तिगत आकांक्षा, नौकरशाही अवसरवाद और लैंगिक स्वायत्तता एक सरल निष्कर्ष में विलीन नहीं होते। तारा जैसे पात्र के माध्यम से स्त्री का प्रश्न परिवार की मर्यादा तक सीमित नहीं रहता; शिक्षा, रोजगार और जीवन-निर्णय राजनीतिक स्वतंत्रता की कसौटी बनते हैं। कृति राष्ट्रवाद की उपलब्धि को अस्वीकार नहीं करती, किंतु यह पूछती है कि यदि सामाजिक समानता और व्यक्तिगत गरिमा सुरक्षित न हों तो राजनीतिक स्वतंत्रता किसके लिए सार्थक है।

6.4 "तमस": सांप्रदायिकता का निर्मित यथार्थ

"तमस" की केंद्रीय अंतर्दृष्टि यह है कि सांप्रदायिक हिंसा स्वतःस्फूर्त धार्मिक शत्रुता नहीं, बल्कि योजनाबद्ध संकेतों, अफवाहों, भय और प्रशासनिक उदासीनता से निर्मित राजनीतिक परिस्थिति है। आरंभिक घटना में नत्थू की आर्थिक विवशता का उपयोग हिंसा भड़काने के लिए किया जाता है। वह न तो निर्णयकर्ता है और न हिंसा का वास्तविक लाभार्थी; फिर भी उसके श्रम को षड्यंत्र की सामग्री बना दिया जाता है। इस बिंदु पर वर्ग और सांप्रदायिक राजनीति एक-दूसरे से जुड़ते हैं।

उपन्यास अनेक समुदायों के भीतर भय, करुणा, संदेह और असुरक्षा को दिखाकर सामूहिक पहचान की एकरूप छवि को तोड़ता है। प्रशासन शांति और निष्पक्षता की भाषा बोलता है, पर निर्णायक हस्तक्षेप में देरी सत्ता की राजनीति को उजागर करती है। हिंसा के बाद राहत और नियंत्रण सक्रिय हो सकते हैं, किंतु पहले से उपलब्ध चेतावनियों की अनदेखी नागरिक जीवन को असुरक्षित बनाती है। बहुदृष्टि शिल्प पाठक को किसी एक समुदाय के आरोप-पक्ष में खड़ा करने के बजाय उस राजनीतिक व्यवस्था पर प्रश्न करने की प्रेरणा देता है जो भय को संगठित शक्ति में बदलती है।

6.5 "राग दरबारी": लोकतांत्रिक संस्थाओं की विडंबना

"राग दरबारी" का शिवपालगंज स्वतंत्र भारत के लोकतंत्र का सूक्ष्म रूपक है। विद्यालय, पंचायत, सहकारी समिति, पुलिस और स्थानीय नेतृत्व आधुनिक संस्थाओं के नाम और नियमों को धारण करते हैं, किंतु उनका संचालन वैद्यजी के संरक्षण-जाल, गुटबंदी, भय और व्यक्तिगत लाभ से निर्धारित होता है। कानून समाप्त नहीं होता; उसे चयनात्मक रूप से लागू करके प्रभुत्व को वैध बनाया जाता है। चुनाव सहभागिता की प्रक्रिया दिखते हैं, पर उम्मीदवार, संसाधन और दबाव पहले से नियंत्रित होने के कारण परिणाम नागरिक इच्छा से दूर हो जाता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

व्यंग्य कृति का सजावटी गुण नहीं, ज्ञान की पद्धति है। हास्य पाठक को संस्थागत भाषा और वास्तविक व्यवहार के अंतर को पहचानने देता है। रंगनाथ की शिक्षित दृष्टि आरंभ में बाहरी निरीक्षक की भूमिका निभाती है, किंतु धीरे-धीरे उसकी निष्क्रियता यह संकेत देती है कि केवल बौद्धिक आलोचना पर्याप्त प्रतिरोध नहीं बनती। उपन्यास में साधारण नागरिक की एजेंसी सीमित है क्योंकि विरोध को व्यक्तिगत संघर्ष, कानूनी जटिलता या सामाजिक बहिष्कार में बदल दिया जाता है। इसलिए कृति लोकतंत्र की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक रूपों के भीतर अलोकतांत्रिक संचालन का चित्रण करती है।

6.6 "महाभोज": मृत्यु का चुनावी उपभोग

"महाभोज" में बिसू की मृत्यु न्याय का स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न करती है, किंतु सत्ता और विपक्ष दोनों उसे चुनावी गणना में बदल देते हैं। पुलिस जाँच, प्रशासनिक बयान, राजनीतिक दौरे और समाचार-प्रस्तुति सत्य की खोज के साधन होने चाहिए; कृति दिखाती है कि ये साधन प्रतिस्पर्धी हितों के कारण सत्य को नियंत्रित भी कर सकते हैं। मृतक की सामाजिक पहचान और परिवार की पीड़ा प्रतिनिधित्व के नाम पर बार-बार प्रयुक्त होती है, पर निर्णय-प्रक्रिया में वास्तविक पीड़ित की आवाज़ सबसे कमजोर रहती है। मन्नू भंडारी राजनीतिक भाषा की नैतिक रिक्तता को विशेष रूप से उद्घाटित करती हैं। "जनता", "न्याय", "व्यवस्था" और "विकास" जैसे शब्द सभी पक्षों की भाषण-सामग्री बनते हैं, किंतु उनके अर्थ सत्ता-समीकरण के अनुसार बदलते हैं। मीडिया में प्रतिरोध की संभावना है, पर उस पर स्वामित्व, पहुँच और राजनीतिक दबाव का प्रभाव रहता है। कृति का महत्त्व इस तथ्य में है कि वह अपराध को अलग घटना न मानकर उसके पीछे सक्रिय संरक्षण-तंत्र का विश्लेषण करती है। नागरिक प्रतिरोध तभी प्रभावी हो सकता है जब घटना का स्वामित्व दलों से हटकर समुदाय, स्वतंत्र पत्रकारिता और उत्तरदायी संस्थाओं के पास लौटे।

6.7 "जूठन": अनुभव, जाति और प्रतिरोधी आत्मकथन

"जूठन" आधुनिक हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ के स्रोत को निर्णायक रूप से बदलती है। यहाँ दलित जीवन किसी बाहरी सहानुभूति का विषय नहीं, अनुभवकर्ता की अपनी स्मृति और भाषा में व्यक्त इतिहास है। भोजन की बची वस्तु, जाति-निर्धारित श्रम, विद्यालय का अपमान, स्थानिक अलगाव और संबोधन के तरीके बताते हैं कि जाति अमूर्त विश्वास नहीं बल्कि दैनिक संसाधन-वितरण और मनुष्य की गरिमा पर नियंत्रण है। शिक्षा मुक्ति की संभावना देती है, फिर भी विद्यालय स्वयं भेदभाव से मुक्त नहीं है। इस प्रकार आधुनिक राज्य के समानता-सिद्धांत और सामाजिक व्यवहार के बीच गहरा अंतर सामने आता है।

आत्मकथात्मक कथन व्यक्तिगत पीड़ा को निजी दुर्घटना नहीं रहने देता। स्मृति सार्वजनिक साक्ष्य बनती है और मौन की सामाजिक अपेक्षा को तोड़ती है। प्रतिरोध का स्वर केवल आक्रोश में नहीं, शिक्षा, लेखन, संगठन और आत्मनामकरण में भी प्रकट होता है। "जूठन" लोकतंत्र की गुणवत्ता को इस कसौटी पर परखती है कि सबसे वंचित नागरिक अपने अनुभव को किस स्वतंत्रता से कह सकता है और संस्था उसे कितनी गंभीरता से सुनती है। इस कृति के साथ हिंदी साहित्य में प्रतिनिधित्व का प्रश्न "दलित का चित्रण किसने किया" से आगे बढ़कर "दलित स्वयं किस दृष्टि से इतिहास लिखता है" बन जाता है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

6.8 "मोहनदास": पहचान की चोरी और संस्थागत असत्य

"मोहनदास" में समकालीन सत्ता का सबसे भयावह रूप यह है कि वह व्यक्ति की योग्यता ही नहीं, उसका नाम और वैधानिक अस्तित्व भी छीन सकती है। एक प्रभावशाली व्यक्ति मोहनदास के प्रमाणपत्रों और पहचान का उपयोग करके नौकरी प्राप्त करता है; पीड़ित जब प्रमाण प्रस्तुत करता है तो कार्यालय, पुलिस और न्यायिक प्रक्रिया उसे ही असत्य सिद्ध करने लगती है। कृति दर्शाती है कि दस्तावेज आधुनिक नागरिकता का आधार हैं, पर दस्तावेज पर नियंत्रण रखने वाली संस्था यदि पक्षपाती हो तो सत्य का लिखित प्रमाण भी संरक्षण-जाल के सामने निष्प्रभावी हो सकता है।

यहाँ जाति, वर्ग, बेरोजगारी और उदारीकरणोत्तर अवसर-संरचना परस्पर जुड़ी हैं। रोजगार को प्रतिभा और परिश्रम का निष्पक्ष फल मानने वाली धारणा टूटती है क्योंकि पहुँच, पूँजी और प्रशासनिक संबंध योग्यता का अपहरण कर लेते हैं। पत्रकारिता और नागरिक हस्तक्षेप आशा के छोटे क्षेत्र बनाते हैं, किंतु न्याय अनिश्चित रहता है। "मोहनदास" का विडंबनात्मक शिल्प पाठक को उस व्यवस्था से परिचित कराता है जिसमें सत्य को बार-बार सिद्ध करना कमजोर की जिम्मेदारी बन जाता है, जबकि शक्तिशाली के झूठ को संस्थागत समर्थन प्राप्त रहता है।

6.9 तुलनात्मक विवेचन

आठों कृतियों की तुलना से सत्ता की संरचना में परिवर्तन और निरंतरता दोनों स्पष्ट होते हैं। "गोदान" में प्रभुत्व मुख्यतः जमींदार, महाजन, पुरोहित और पितृसत्तात्मक समुदाय के माध्यम से संचालित होता है। "मैला आँचल" में राज्य विकास, स्वास्थ्य और दलगत राजनीति के रूप में गाँव में प्रवेश करता है। "झूठा सच" और "तमस" राष्ट्रीय राजनीति के विशाल निर्णयों को घर, देह और पड़ोस की असुरक्षा में अनूदित करते हैं। "राग दरबारी" और "महाभोज" में लोकतांत्रिक संस्थाएँ मौजूद हैं, पर संरक्षण, भ्रष्टाचार और चुनावी हित उन्हें भीतर से विकृत करते हैं। "जूठन" बताती है कि संवैधानिक समानता के बावजूद सामाजिक सत्ता दैनिक जीवन में बनी रहती है, जबकि "मोहनदास" समकालीन नौकरशाही और पूँजी के गठजोड़ से उत्पन्न नए प्रकार के अधिकार-हरण को सामने लाता है।

निरंतरता का सबसे प्रमुख पक्ष यह है कि कमजोर व्यक्ति और संस्था के बीच शक्ति-अंतर बना रहता है। परिवर्तन यह है कि शोषण की वैधता सामंती परंपरा से आधुनिक नियम, दस्तावेज, चुनाव और विकास की भाषा में स्थानांतरित होती है। साहित्य इस रूपांतरण को पकड़ता है क्योंकि वह नीति के घोषित उद्देश्य के साथ उसके मानवीय परिणाम को रखता है। चयनित कृतियों में प्रतिरोध भी बदलता है—धनिया का नैतिक प्रतिवाद, ग्रामीण सामूहिकता, विस्थापित स्त्री की स्वायत्तता, सांप्रदायिकता के विरुद्ध मानवीय संबंध, व्यंग्यात्मक अनावरण, न्याय की सार्वजनिक माँग, दलित आत्मकथन और पत्रकारिता-सहायित अधिकार-संघर्ष। कोई भी कृति प्रतिरोध को सरल विजय में नहीं बदलती; उसकी सीमाएँ दिखाना ही यथार्थवादी राजनीतिक चेतना का भाग है।

7. निष्कर्ष

अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक हिंदी साहित्य में समाज और राजनीति का संबंध बाह्य विषय-वस्तु का नहीं, रचना की आंतरिक संरचना का प्रश्न है। जाति, वर्ग, धर्म, लिंग, ग्रामीणता और शिक्षा

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

जैसे सामाजिक आयाम अधिकार, संसाधन, प्रतिनिधित्व और निर्णय की राजनीतिक प्रक्रियाओं से जुड़े हैं। इसी कारण चयनित कृतियाँ निजी जीवन के प्रसंगों में सार्वजनिक सत्ता को और सार्वजनिक नीतियों में निजी पीड़ा को दृश्य बनाती हैं।

"गोदान" से "मोहनदास" तक की यात्रा सत्ता के रूपांतरण का इतिहास प्रस्तुत करती है। सामंती-धार्मिक प्रभुत्व समाप्त होकर सीधे शून्य नहीं बनता; वह पंचायत, सहकारिता, पुलिस, दल, मीडिया, कार्यालय और दस्तावेज जैसी आधुनिक संस्थाओं में नए रूप ग्रहण करता है। लोकतंत्र अवसर और प्रतिरोध की भाषा प्रदान करता है, किंतु सामाजिक पदानुक्रम और संरक्षण-तंत्र उसकी समानतामूलक क्षमता को सीमित करते हैं। साहित्य इन सीमाओं को केवल आरोप के रूप में नहीं, पात्रों के जीवन, संबंध, भाषा और परिणाम के माध्यम से अनुभवगम्य बनाता है।

रचनात्मक पद्धतियों में भी राजनीतिक अर्थ निहित है। प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थवाद संरचनात्मक शोषण को समग्रता में दिखाता है; रेणु की बहुस्वरता अंचल की आवाज़ों को केंद्रीयता देती है; यशपाल और साहनी इतिहास के भीतर साधारण मनुष्य की असुरक्षा सामने रखते हैं; श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य संस्थागत पाखंड को उजागर करता है; मन्नू भंडारी राजनीतिक उपभोग की नैतिकता पर प्रश्न उठाती हैं; वाल्मीकि का आत्मकथन प्रतिनिधित्व की सत्ता को बदलता है; और उदय प्रकाश की विडंबना आधुनिक संस्थागत सत्य की अविश्वसनीयता को प्रकट करती है।

अतः आधुनिक हिंदी साहित्य को समाज का दर्पण कहना पर्याप्त नहीं है। वह सामाजिक यथार्थ का चयन, पुनर्संयोजन और नैतिक परीक्षण करता है; सत्ता द्वारा सामान्य बनाए गए अन्याय को नाम देता है; हाशिये की आवाज़ को सार्वजनिक बनाता है; और पाठक को नागरिक आत्मपरीक्षण की ओर प्रेरित करता है। इन कृतियों की प्रासंगिकता इसी में है कि वे लोकतंत्र को केवल शासन-पद्धति नहीं, गरिमा, समानता, उत्तरदायित्व और सत्य की सतत सामाजिक साधना के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करती हैं।

संदर्भ

1. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन; 2009.
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2007.
3. सिंह, नामवर. इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2009.
4. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 1993.
5. प्रेमचंद. गोदान. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस; 2015.
6. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2016.
7. यशपाल. झूठा सच: वतन और देश तथा देश का भविष्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन; 2020.
8. साहनी, भीष्म. तमस. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2022.
9. शुक्ल, श्रीलाल. राग दरबारी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2014.
10. भंडारी, मन्नू. महाभोज. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन; 2008.
11. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन; 1999.
12. प्रकाश, उदय. मोहनदास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 2006.

13. विलियम्स, रेमंड. मार्क्सवाद और साहित्य. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1977.
14. लूकाच, जॉर्ज. यूरोपीय यथार्थवाद का अध्ययन. लंदन: हिलवे पब्लिशिंग; 1950.
15. ग्राम्शी, अंतोनियो. जेल की नोटबुक से चयन. न्यूयॉर्क: इंटरनेशनल पब्लिशर्स; 1971.
16. हाबर्मास, युर्गेन. सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक रूपांतरण. कैंब्रिज: एमआईटी प्रेस; 1989.
17. जेम्सन, फ्रेडरिक. राजनीतिक अवचेतन: सामाजिक प्रतीकात्मक क्रिया के रूप में आख्यान. इथाका: कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस; 1981.
18. बाख्तिन, मिखाइल. संवादात्मक कल्पना: चार निबंध. ऑस्टिन: यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास प्रेस; 1981.
19. सईद, एडवर्ड डब्ल्यू. संस्कृति और साम्राज्यवाद. न्यूयॉर्क: अल्फ्रेड ए. नॉफ; 1993.
20. एशक्रॉफ्ट, बिल; ग्रिफिथ्स, गैरेथ; टिफिन, हेलेन. साम्राज्य का प्रत्युत्तर: उत्तर-औपनिवेशिक साहित्य में सिद्धांत और व्यवहार. लंदन: रूटलेज; 1989.
21. अहमद, एजाज़. सिद्धांत में: वर्ग, राष्ट्र, साहित्य. लंदन: वर्सो; 1992.
22. ऑर्सिनी, फ्रांसेस्का. हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र 1920–1940: साम्राज्यवाद के युग में भाषा और साहित्य. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 2002.
23. डालमिया, वसुधा. हिंदू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण: उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में भारतेंदु हरिश्चंद्र और बनारस. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1997.
24. दास, शिशिर कुमार. भारतीय साहित्य का इतिहास 1911–1956: स्वतंत्रता के लिए संघर्ष—विजय और त्रासदी. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी; 1995.
25. ऑम्वेट, गेल. दलित और लोकतांत्रिक क्रांति: औपनिवेशिक भारत में डॉ. आंबेडकर और दलित आंदोलन. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन; 1994.